



THE TIMES OF INDIA

Date: 05-12-18

Bridging A Divide

A cold chain connecting them to cities is essential to help India's vegetable growers

TOI Editorial



A Nashik onion-grower who donated Rs 1,064 earned from selling his 750 kg produce to the Prime Minister's Disaster Relief Fund underlines the distress among farmers about the disparity between farmgate and urban retail prices. Farmers are getting rock-bottom prices like just 20 paisa/kg for brinjal, Re 1 for onion, Rs 2.5 for coriander and Rs 3 for tomato though their retail prices range between Rs 20-30 per kg. Successive governments have grappled without much success with this conundrum of putting more of the consumer's money in the farmer's pocket.

This is where a fully developed cold chain network linking villages to cities can make a difference. The fast perishable nature of vegetables and fruits puts farmers in an extremely vulnerable situation where they cannot hold on to their harvest longer than a day or two. According to government estimate, India needs at least 70,000 "pack-houses" closer to villages where the produce can be pooled, sorted, pre-cooled, packaged and dispatched to cold storages, against 450 of these pack-houses presently. Simultaneously dismantling the APMC model will help farmers access these modern facilities and distant markets.

Opportunities are arising in food processing centred on frozen or dried vegetables/ fruits that can be tapped through long-term contracts between agro product companies or large retailers and farmers. These can insulate farmers from price crashes to some extent. Currently, too many farmers are taking the plunge in choosing crops based on last month's, last six months' or last year's price cycle and burning their fingers without assured buyers. Price stabilisation and support schemes can offer some immediate relief but middlemen benefit even here. Focus on cold chain development and agriculture market reforms can help governments regain goodwill among both farmers and consumers.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 05-12-18

Populism in Power Kills Agro Industry

Ending power theft key to farm prosperity

ET Editorials

For want of quality, reliable power supply, onion farmers in Maharashtra are throwing away their harvest or selling it at throwaway prices. The unfortunate reality pan-India is that populism in power and rampant giveaways have stymied the finances of power utilities to such an extent as to make agro-

processing quite unviable. The quality of power in rural areas and the hinterland generally remains poor and it sorely pre-empts agro-industries, which, rather than support prices, hold the key to ending farm distress.

India's agrarian crisis is made worse by about a third of the generated power not being paid for, thanks to political patronage of routine theft of electricity. The runaway revenue leakage and huge losses in power distribution cripple the ability of power utilities to supply stable power in the daytime in rural areas, a prerequisite for storage and/or processing of perishable farm produce.

Power utility finances are opaque. Power Finance Corporation offers data for 2015-16, showing a rise in state power utility losses to Rs 89,603 crore. What is left unstated is that electricity duty levied by states on power supplies adds up to about Rs 30,000 crore annually, and not only means high-cost power for paying customers but also paves way for the powers that be to muddle along with the sector unreformed. Aggregate losses for power utilities in Maharashtra add up to Rs 62,015 crore for 2015-16.

It is a very high price to pay for gross populism, which is completely unsustainable. It is also a fact that a water-intensive crop like sugarcane in arid regions of Maharashtra leads to heightened power usage, and competitive politics ends up supplying gratis or near gratis power at a huge national cost in terms of the sheer lack of agro-processing facilities for onions and other crops. The capacity for cold storage and cold chains is also affected. Farm distress cannot be tackled with a bankrupt power sector. What is needed is the political will to tell people they have to pay for the power they consume. If that is done, no farmer will have to dump his crop in despair.



Date: 05-12-18

दैनिक भास्कर

यूएई ने भारत को सौंपा 225 करोड़ रुपए की दलाली लेने वाला बिचौलिया मिशेल

अगस्ता-वेस्टलैंड वीवीआईपी हेलिकॉप्टर घोटाले में प्रत्यर्पण की कार्रवाई



3600 करोड़ रुपए के अगस्ता-वेस्टलैंड वीवीआईपी हेलिकॉप्टर घोटाले में बिचौलिये ब्रिटिश नागरिक क्रिश्चियन मिशेल (57) को मंगलवार रात को संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) से भारत लाया गया। सीबीआई, राँ और विदेश मंत्रालय के अफसर दुबई से उसे गल्फ स्ट्रीम के जेट विमान से लाए। दिल्ली में इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय विमानतल पर 10:35 बजे पहुंचते ही सीबीआई ने उसे हिरासत में ले लिया। इमिग्रेशन प्रक्रिया के बाद उसे सीबीआई मुख्यालय ले जाया गया। वीवीआईपी हेलिकॉप्टर सौदे में मिशेल पर 225

करोड़ रुपए की दलाली लेने का आरोप है। इस मामले में पूर्व वायुसेना प्रमुख एसपी त्यागी भी आरोपी हैं। सीबीआई ने कहा कि राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल के दिशा-निर्देश में चलाए गए ऑपरेशन से क्रिश्चियन मिशेल को देश लाने में यह कामयाबी मिली है।

सीबीआई ने एक बयान में यह बात कही है। सीबीआई अधिकारियों ने कार्यकारी निदेशक एम. नागेश्वर राव के समन्वय से इस ऑपरेशन को अंजाम दिया। सीबीआई के ज्वाइंट डायरेक्टर ए साई मनोहर प्रत्यर्पण की प्रक्रिया को अंजाम देने दुबई गए थे। विदेश मंत्री सुषमा स्वराज भी इस समय यूएई में हैं। दुबई की कोर्ट ने सितंबर में क्रिश्चियन मिशेल के प्रत्यर्पण का आदेश दे दिया था, जिसे उसने अपील कोर्ट में चुनौती दी थी। लेकिन पिछले महीने अपील कोर्ट ने प्रत्यर्पण के खिलाफ उसकी अर्जी खारिज कर दी थी। उसे फरवरी 2017 में दुबई में गिरफ्तार किया गया था। वीवीआईपी हेलीकॉप्टर घोटाले में जांच कर रही सीबीआई ने जून 2016 में दाखिल अपने आरोप-पत्र में कहा था कि मिशेल को अगस्ता-वेस्टलैंड सौदे में 225 करोड़ रुपए की दलाली मिली है। ईडी भी इस मामले की जांच कर रहा है।

नईदुनिया

Date: 05-12-18

आर्थिक सुगमता बढ़ाने पर जोर

डॉ. जयंतिलाल भंडारी, (लेखक अर्थशास्त्री हैं)

हाल ही में अर्जेंटीना की राजधानी ब्यूनस आयर्स में संपन्न दो-दिवसीय जी-20 शिखर सम्मेलन कई मायनों में सार्थक रहा। इस शिखर सम्मेलन में संरक्षणवादी प्रवृत्ति से बचने, अंतरराष्ट्रीय व्यापार को सरल बनाने, आर्थिक अपराधों की अंतरराष्ट्रीय रोकथाम तथा उभरती अर्थव्यवस्था वाले देशों की चिंताओं को कम करने के मद्देनजर एकमत से सकारात्मक निर्णय लिए गए। इस सम्मेलन का सबसे उज्ज्वल पक्ष यह रहा कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप सहित जी-20 के सभी राष्ट्र प्रमुख विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में सुधार के लिए सहमत हो गए। इसी के साथ अमेरिका और चीन के बीच जारी ट्रेड वॉर के थमने की उम्मीद बढ़ गई है। अमेरिका और चीन ने एक जनवरी के बाद नए शुल्क नहीं लगाने पर सहमति जताई है।

इसमें कोई दोमत नहीं कि जी-20 ब्यूनस आयर्स शिखर सम्मेलन अब तक का सबसे सफल शिखर सम्मेलन रहा है। गौरतलब है कि जी-20 का गठन वर्ष 1999 में हुआ था। इस संगठन का लक्ष्य दुनिया के विकसित और विकासशील देशों को एक मंच पर लाना और आर्थिक मुद्दों पर एकराय बनाने की कोशिश करना है। जी-20 दुनिया के सकल वैश्विक उत्पाद (जीडब्ल्यूपी) का 85 फीसदी, विश्व व्यापार का 80 फीसदी और दुनिया की कुल जनसंख्या का 75 फीसदी हिस्सा रखने वाला संगठन है। इस संगठन को शुरुआती कई वर्षों तक प्रभावशाली देशों के निष्क्रिय संगठन के रूप में ही जाना जाता रहा। लेकिन वर्ष 2008 में वैश्विक अर्थव्यवस्था में छाई मंदी के बाद जी-20 एकाएक उठ खड़ा हुआ। उस समय दुनिया के शक्तिशाली देशों का संगठन जी-7 वैश्विक आर्थिक मंदी का मुकाबला करने में सक्षम नहीं दिखाई दिया था। ऐसे में दुनिया को वैश्विक मंदी से उबारने में जी-20 की अहम भूमिका समझी गई। अब 2008 के एक दशक बाद 2018 में जी-20 संगठन एक बार फिर वैश्विक अर्थव्यवस्था को सुचारू बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता नजर आ रहा है।

बहरहाल, जी-20 का हालिया सम्मेलन भारत के लिहाज से भी काफी सार्थक रहा। इस शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विजय माल्या और नीरव मोदी जैसे भगोड़े आर्थिक अपराधियों से संयुक्त रूप से निपटने के लिए जी-20 के सदस्य देशों के बीच मजबूत एवं सक्रिय सहयोग के आह्वान के साथ फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स के गठन का जो नौ-सूत्री एजेंडा पेश किया, उसे एकमत से स्वीकार किया गया। यह एजेंडा भारत के घरेलू कारकों से भी प्रेरित था। देशभर में पिछले एक वर्ष में बैंकों से धोखाधड़ी कर विदेश भागने वाले आर्थिक अपराधियों के कारण मोदी सरकार के खिलाफ आलोचना का माहौल बना है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सम्मेलन से इतर जी-20 के सदस्य देशों के साथ भारत के आर्थिक व सामरिक संबंधों को और मजबूत करने की डगर पर आगे बढ़े। इस सम्मेलन के दौरान एक बार फिर से भारत का गुटनिरपेक्ष चेहरा दुनिया ने देखा। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप और जापानी प्रधानमंत्री शिंजो आबे के साथ नरेंद्र मोदी ने अपनी पहली त्रिपक्षीय बैठक की। रणनीतिक महत्व के हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती दादागीरी के मद्देनजर यह बैठक काफी मायने रखती है। इस बैठक से तीनों देशों के बीच आर्थिक-कारोबारी संबंध बढ़ाने का परिदृश्य भी उभरकर सामने आया।

भारत सबसे ज्यादा निर्यात अमेरिका को करता है। जाहिर है, अमेरिका को भारत की जरूरत है और भारत को भी अपने आर्थिक उद्देश्यों के लिए अमेरिका की जरूरत है। इसी तरह हाल के वर्षों में जापान के साथ भी आर्थिक रिश्ते मजबूत हुए हैं। जापान सरकार हमारे देश की कई प्रमुख बुनियादी परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में धन प्रदान कर रही है। इसके साथ-साथ इस सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री मोदी की रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ बैठक भी काफी अहम रही। यह अच्छी बात है कि चीन और रूस के साथ भारत के संबंधों की एक नई धुरी बन रही है। चीन और भारत के बीच आपसी व्यापार को 2020 तक 100 अरब डॉलर तक पहुंचाने का लक्ष्य है। चीन का कहना है कि पश्चिमी देशों के बढ़ते संरक्षणवादी रवैये को देखते हुए भारत और चीन को आपसी सहयोग बढ़ाना चाहिए। इसमें दोमत नहीं कि मोदी अप्रैल 2018 में वुहान में चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ अनौपचारिक मुलाकात और फिर जून-जुलाई में हुए वार्तालाप से उपजे लाभ को आगे बढ़ाने में कामयाब रहे। इसी कारण इस शिखर सम्मेलन के दौरान चीन ने कहा कि वह भारत से आयात बढ़ाएगा और व्यापार असंतुलन के प्रति भारत की चिंताओं पर गौर करेगा।

जहां तक रूस का प्रश्न है तो इस शिखर सम्मेलन में चीन के साथ-साथ रूस से भी आर्थिक संबंधों को आगे बढ़ाने का सार्थक परिदृश्य उभरा। इतिहास गवाह है कि हमारे देश के बुनियादी ढांचे के विकास में रूस ने अहम भूमिका निभाई है। 1960 के दशक में हमने पूर्ववर्ती सोवियत संघ (यूएसएसआर) के साथ रक्षा सहयोग की शुरुआत भी की थी। जी-20 सम्मेलन के दौरान यह स्पष्ट रूप से रेखांकित हुआ कि चीन व रूस के साथ भारत आपसी रिश्तों के नए दौर में आगे बढ़ेगा। हालांकि इस सम्मेलन के दौरान सभी सदस्य देशों के द्वारा यह कहा गया कि वे संरक्षणवाद की नीतियों को नहीं अपनाएंगे तथा वैश्विक आर्थिक एकीकरण की दिशा में आगे बढ़ेंगे, लेकिन मेरी राय में इसका क्रियान्वयन सरल नहीं है। चूंकि संरक्षणवादी रवैया वैश्विक व्यापार को पीछे ले जाता है, अतएव वैश्विक व्यापार की नई संभावनाओं के लिए प्रतिस्पर्धा के दरवाजे खोलने होंगे। आर्थिक संकट के कारण बढ़ती बेरोजगारी का सामना संरक्षणवादी रवैया अपनाने की जगह श्रमशक्ति को प्रशिक्षण और उनके कौशल विकास के द्वारा किया जाना होगा।

इसमें कोई शक नहीं कि जी-20 के इस हालिया शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों के बीच वैश्विक व्यापार में वृद्धि, डब्ल्यूटीओ में सुधार, वित्तीय सहायता में सरलता और आर्थिक अपराधों पर वैश्विक नियंत्रण हेतु जो अहम सहमतियां बनी हैं, उनसे दुनिया एक जवाबदेह वैश्विक गांव बनने की डगर पर आगे बढ़ेगी। हम आशा करें कि जब वर्ष 2022 में

हमारी आजादी के 75 साल पूरे होने के अवसर पर जी-20 का शिखर सम्मेलन भारत में होगा तो यह हमारे लिए वैश्विक अहमियत बढ़ाने के साथ-साथ नई आर्थिक संभावनाओं को तलाशने/उभारने का एक बड़ा अवसर साबित होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 05-12-18

लोकतांत्रिक संस्थान हैं जोखिम में

जोया हसन, (लेखिका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के राजनीतिक अध्ययन केंद्र की अवकाशप्राप्त प्रोफेसर हैं।)

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) कांग्रेस पार्टी, सोनिया गांधी और भूतपूर्व राष्ट्रीय सलाहकार परिषद पर लगातार हमले करते हुए यह कहती आई है कि वे रिमोट कंट्रोल से सरकार चलाते थे और इस प्रकार उन्होंने राजनीतिक प्रक्रियाओं और सार्वजनिक संस्थानों को क्षति पहुंचाई है। इस आलोचना के बाद यह माना जाने लगा कि अगर भाजपा सत्ता में आई तो वह लोकतांत्रिक संस्थानों की पवित्रता और प्रभुता बहाल करेगी। परंतु अब लग रहा है कि इसका उलटा हुआ है। उसके कार्यकाल में सरकारी और गैर सरकारी दोनों तरह के संस्थान दबाव महसूस कर रहे हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि सरकार अपनी प्रभुता मजबूत करने और संस्थानों पर वैचारिक नियंत्रण कायम करने के क्रम में रिश्तों का समायोजन करने में लगी है। आजादी के बाद से भारत की राजनीति ने केंद्रीय सहमति की व्यवस्था विकसित कर ली है।

सन 2014 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के सत्ता में आने के बाद से ही यह सहमति टूटने लगी है। भाजपा ने अपने जनादेश का इस्तेमाल बहुसंख्यकवादी राज्य बनाने में किया है। इस प्रकार उसने लोकतंत्र को नए सिरे से परिभाषित करना शुरू किया। मोदी सरकार के प्रभाव के बीच संस्थानों की स्वायत्तता सवालों के घेरे में है। निर्वाचन आयोग, केंद्रीय जांच ब्यूरो, केंद्रीय सतर्कता आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, भारतीय रिजर्व बैंक, मीडिया और विश्वविद्यालयों आदि को समझौतापरक बनना पड़ा है। असहमति की जगह घटी है। देश की उच्च धुवीकरण वाली राजनीति में असहमति का अपराधीकरण किया जा रहा है। सरकार असहमति को देश को नुकसान पहुंचाने वाले कदम के रूप में प्रस्तुत कर रही है। मीडिया पर लगाम की बात भी सर्वज्ञात है।

विश्वविद्यालयों में भी यही हाल है। कई उच्च शिक्षा संस्थानों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विश्वस्तों की भर्ती की गई है, भले ही उनके पास जरूरी काबिलियत तक नहीं थी। यह पहला मौका नहीं था जब सत्ता ने अपने पसंदीदा लोगों को प्रभावशाली पदों से नवाजा हो। इसके बावजूद अतीत में अकादमिक संस्थाओं के प्रमुखों या सदस्यों का एक पेशेवर कद होता था लेकिन इस सरकार द्वारा पदस्थापित लोगों का रिकॉर्ड तो अत्यधिक निराश करने वाला है। उनके पास विशेषज्ञता और उपलब्धि के नाम पर कुछ नहीं है। इन नवनियुक्त लोगों ने अपने-अपने संस्थान में लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली को खत्म करने में अहम भूमिका निभाई है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय इसका उदाहरण है।

अक्सर एजेंसियों और संस्थानों पर आरोप लगता है कि वे सरकार को ध्यान में रखते हुए काम कर रहे हैं। दो उदाहरण लेते हैं: निर्वाचन आयोग की भूमिका को लेकर सवाल उठाए जाते रहे हैं जबकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस संस्थान की स्वायत्तता और स्वतंत्रता अत्यंत आवश्यक है। निर्वाचन आयोग ने सरकार द्वारा चुनावी चंदे की सफाई के लिए लाए गए

इलेक्टोरल बॉन्ड को उचित ही अतीतगामी कदम ठहराया था लेकिन जल्दी ही उसने अपना मन बदलकर इसे सही कदम में उठाया गया कदम बताना शुरू कर दिया। जबकि यह स्पष्ट था कि ये बॉन्ड राजनीतिक फंडिंग को और अधिक अस्पष्ट बना रहे थे। निर्वाचन आयोग की प्रतिष्ठा को तब और अधिक झटका लगा जब उसने 2017 के अंत में गुजरात और हिमाचल विधानसभा चुनावों के लिए अलग-अलग तारीख घोषित की। आमतौर पर यहां एक साथ चुनाव होते आए थे। ऐसा करने से केंद्र और राज्य सरकारों को सत्ता विरोधी माहौल से निपटने वाली घोषणाएं करने में मदद मिली।

चुनाव आयोग ने दावा किया कि उसने गुजरात चुनाव की घोषणा में इसलिए देरी की ताकि चुनाव आचार संहिता से बाढ़ राहत का काम प्रभावित न हो। यह बात भरोसे लायक नहीं थी क्योंकि इस देरी का बाढ़ राहत से कोई संबंध नहीं था। इससे आशंका बढ़ गई कि संवैधानिक स्थिति को सीमित कर सत्ताधारी दल के राजनीतिक हित साधे जा रहे हैं। आरबीआई की स्वायत्तता को भी नुकसान पहुंचा। बीते कुछ वर्षों में वित्त मंत्रालय ने अक्सर बिना आरबीआई से मशविरा किए कई घोषणाएं कीं। नोटबंदी जैसा बड़ा फैसला भी बिना केंद्रीय बैंक से मशविरा किए लिया गया। बाद में आरबीआई को कागजी कार्रवाई करके यह दिखाना पड़ा कि नोटबंदी आरबीआई बोर्ड की मंजूरी से की गई। पूंजी भंडार को लेकर तथा छोटे और मझोले उपक्रमों को आसान ऋण को लेकर सरकार और आरबीआई के बीच टकराव बढ़ा। सरकार बैंकिंग संकट से निपटने के लिए आरबीआई के पूंजी भंडार का इस्तेमाल करना चाहती है।

19 नवंबर की बोर्ड बैठक के बाद भी यह तय नहीं हो सका है कि दोनों के बीच शांति कायम हुई है या केंद्रीय बैंक की पराजय हुई है। इस विवाद ने सरकार और आरबीआई के रिश्ते के तनाव को नए सिरे से सामने ला दिया। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने अटल बिहारी वाजपेयी स्मृति व्याख्यान में इस बारे में कहा कि भारत देश किसी भी सरकार या संस्थान से बड़ा है। उन्होंने अफसोस जताया कि निर्वाचित सरकार को कमजोर करने के प्रयास किए गए और गैर निर्वाचित गैर जवाबदेह संस्थानों को अधिकार देने का प्रयास किया गया। निर्वाचित गैरनिर्वाचित की यह बहस ही छद्म और अलोकतांत्रिक है। गैरनिर्वाचित संस्थानों को नुकसान पहुंचाना देश के लोकतांत्रिक ढांचे को नुकसान पहुंचाना है। एक प्रमुख समाचार पत्र ने लिखा कि लोकतंत्र में राष्ट्र बनाम संस्थान जैसा कुछ नहीं होता।

संस्थानों की स्वायत्तता को लेकर मोदी सरकार की असहजता को समझा जा सकता है क्योंकि यह उसकी अधिनायकवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाते हैं। कई संस्थानों ने सरकार के विरुद्ध अपने अस्तित्व को बचाना भी शुरू कर दिया। वर्ष 2019 के आम चुनाव करीब आ रहे हैं और राजनीतिक परिदृश्य बदल रहा है। ऐसे में कई संस्थानों को लग रहा है कि सरकार बदल सकती है। उनके भीतर प्रतिरोध का साहस पैदा हुआ है। इसमें कोई दो राय नहीं कि कांग्रेस ने संस्थानों को कमजोर करने की शुरुआत की थी। इंदिरा गांधी ने अपनी व्यक्तिगत राजनीतिक महत्वाकांक्षा के चलते पार्टी, संसद, नौकरशाही, न्यायपालिका, राष्ट्रपति पद और यहां तक कि भारतीय लोकतंत्र जैसे संस्थान को नुकसान पहुंचाया। प्रधानमंत्री के रूप में नरेंद्र मोदी के कद के अधीन संस्थानों को और भी नुकसान पहुंचा है। इसके पीछे सीधा तर्क यह है कि एकमात्र वैध प्राधिकार सत्ताधारी दल का नेता है। ऐसे में स्वायत्त और स्वतंत्र संस्थानों को उनका विरोधी मानना निश्चित है। परंतु संस्थानों को क्षति पहुंचाकर या राजनीतिक नेताओं की वैचारिकता को बढ़ावा देकर लोकतंत्र को मजबूत नहीं किया जा सकता। भाजपा की इन कोशिशों से उन संस्थानों की स्थिरता को खतरा उत्पन्न हो गया है जो देश ने दशकों में तैयार किए हैं। इससे लोकतंत्र को बढ़ा नुकसान पहुंचेगा। नेताओं को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि लोकतंत्र को बचाए रखने के लिए ये संस्थान आवश्यक हैं।

Date: 05-12-18

कृषि असंतोष का समाधान

संपादकीय

समय-समय पर होने वाले विरोध प्रदर्शनों की शकल में सामने आने वाले अंतहीन कृषक असंतोष की जड़ें उनकी निम्न आय और सरकार की तरफ से समुचित नीतिगत उपाय नहीं किए जाने में निहित देखी जा सकती हैं। कृषि उपजों की कीमतें अन्य उत्पादों की तुलना में कम बढ़ रही हैं और ग्रामीण इलाकों में मजदूरी भी कम है। विश्लेषकों का कहना है कि भारत की हालिया अवस्फीति में 70 फीसदी अंशदान ग्रामीण मुद्रास्फीति का रहा है। आय कम होने से दूध एवं प्रोटीन जैसे खाद्य उत्पादों की मांग कम हो जाती है जिससे उन उत्पादों की कीमतों में भी कमी आ जाती है। आय में स्थायी कमी होने से किसान कर्ज के जाल में फंस रहे हैं, किसान कर्ज माफी का शोर बढ़ने लगा है और फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) बढ़ाने की मांग भी तेज हुई है। पिछले हफ्ते दिल्ली में हुए किसानों के विरोध प्रदर्शन में भी ये पहलू समान रूप से मौजूद थे।

एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित कृषक आयोग की रिपोर्ट में दिए गए सुझाव लागू करने की मांग भी इसी श्रेणी में शामिल है। आयोग ने कहा था कि फसलों के लिए खरीद मूल्य समेकित उत्पादन लागत (सी2 कॉस्ट) से 50 फीसदी अधिक रखी जानी चाहिए। आयोग ने कृषि उपज के बजाय किसानों की आय को नीतियों के केंद्र में रखने की अनुशंसा की थी। इन सिफारिशों पर केंद्र एवं राज्य सरकारों का रुख भी अपेक्षित नहीं रहा है। एमएसपी तय करते समय सी2 पर कुल फसल लागत को ध्यान में रखने की जगह सरकार का एमएसपी वृद्धि का कदम केवल पेड-आउट लागत पर आधारित है और उसमें कृषक परिवार के श्रम-मूल्य को शामिल नहीं किया गया है। यह कड़वा सच है कि अनुपालन संबंधी दिक्कतों के चलते नई एमएसपी कीमतें भी अधिकतर किसानों को नहीं मिल पा रही हैं। कुछ राज्यों में शुरू की गई कृषि आय आश्वासन योजनाएं भी क्रियान्वयन संबंधी अवरोधों से जूझ रही हैं लिहाजा किसानों को उनका बहुत लाभ नहीं मिल पा रहा है। वास्तव में, आय सृजन एक आर्थिक विषय है और बाजार-आधारित रणनीतियों से ही उससे निपटा जा सकता है।

फसल उत्पादकों को वाजिब कीमत देने के लिए सक्षम, पारदर्शी, प्रतिस्पर्धी एवं बाधा-रहित मार्केटिंग अनिवार्य है। ऐसा होने पर ही फसलों की उपज बाजार की मांग के हिसाब से तय की जा सकती है जिससे अधिशेष एवं अभाव की स्थिति से काफी हद तक निपटा जा सकता है। मौजूदा समय की तरह मनमाने ढंग से तय कीमतें उत्पादन में विकृति, प्रचुरता की स्थिति और उत्पादकों को मिलने वाले भाव में कमी का सबब बनती हैं। इसके अलावा केंद्र एवं राज्य सरकारों की चलाई अधिकांश कृषि विकास योजनाएं गलत दिशा में हैं। ये योजनाएं मोटे तौर पर फसल उपज बढ़ाने पर केंद्रित हैं और अधिशेष की स्थिति में कीमतों पर पड़ने वाले नकारात्मक असर को नजरअंदाज करती हैं। सरकार की विदेश व्यापार नीतियां भी किसानों के हित सुरक्षित रखने के बजाय मुद्रास्फीति के प्रबंधन पर ही अधिक केंद्रित होती हैं। अधिशेष उपज के असर को कम करने के लिए एक निर्यात विंडो रखना अनिवार्य है।

लेकिन मुद्रास्फीति पर काबू पाने के नाम पर ऐसी विंडो रखने से अमूमन परहेज किया जाता है। नीति आयोग के एक विमर्श पत्र से पता चलता है कि ग्रामीण आय का करीब दो-तिहाई हिस्सा गैर-कृषि स्रोतों से आता है। यह राष्ट्रीय नमूना सर्वे कार्यालय (एनएसएसओ) की उस रिपोर्ट से इत्तफाक रखता है कि कृषि के बजाय मजदूरी ही छोटे एवं सीमांत किसानों की 56 फीसदी आय का जरिया है। साफ है कि ग्रामीण इलाकों के आसपास रोजगार के अवसर बढ़ना किसानों की आय बढ़ाने के लिए जरूरी है। बागवानी और फूलों की खेती जैसी अधिक आकर्षक कृषि गतिविधियों को बढ़ावा देकर कृषि आय बढ़ाई जा सकती है। एमएसपी में बढ़ोतरी और कर्ज माफी के बजाय आय-सृजन की बहुआयामी रणनीति किसानों के असंतोष को शांत कर सकती है।

जनसत्ता

Date: 04-12-18

उम्मीदों के बीच

संपादकीय

जलवायु संकट से निपटने के लिए पोलैंड के शहर कातोवित्स में दुनिया के ज्यादातर देशों का जमावड़ा शुरू हो चुका है। सभी की चिंता एक है कि धरती के बिगड़ते पर्यावरण को कैसे बचाया जाए। हालांकि यह सालाना जलवायु शिखर सम्मेलन पिछले कई सालों से हो रहा है, लेकिन हकीकत यह है कि इसके बावजूद धरती का वातावरण लगातार बिगड़ता जा रहा है। इसकी पहली और बड़ी वजह यही है कि सम्मेलन की समाप्ति पर जो घोषणाएं और समझौते होते हैं, वे धरातल पर नहीं उतर पाते। सदस्य राष्ट्र उन पर ठोस अमल नहीं करते। ऐसे में धरती को बचाने की चिंता एक बेमानी रुदन से ज्यादा कुछ नहीं रह जाती। इस बार भी स्थिति इससे ज्यादा अलग नहीं है। दुनिया को पिछले कुछ दशकों में गंभीर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ा है। यह तथ्य है कि औद्योगीकरण और विकास की मार धरती के लिए भारी पड़ी है। ग्रीनहाउस गैसों के अनवरत उत्सर्जन का दुष्परिणाम ओजोन परत में छेद के रूप सामने है।

धरती और वातावरण की गरमी इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि ध्रुवों पर जमी बर्फ पिघल रही है और सुमद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। इससे तटीय शहरों के डूबने का खतरा सामने है। सुनामी जैसी आपदा अब कहीं ज्यादा जल्दी-जल्दी दस्तक दे रही है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं, जिसकी वजह से कई देशों को बाढ़ का सामना करना पड़ा है। जंगलों के कटाव से पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन गड़बड़ा चुका है और जंगल आग की लपटों में समा रहे हैं। दुनिया का कोई भी देश इन आपदाओं से अछूता नहीं रह गया है। सवाल है ऐसे में क्या हो? पोलैंड के जलवायु सम्मेलन में जिस सबसे बड़ी समस्या से सदस्य देश फिर माथापच्ची करेंगे, वह यह कि धरती के बढ़ते तापमान को कैसे काबू किया जाए, जो आज जीवों के अस्तित्व के लिए खतरा बन गया है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यह सदी बढ़ते तापमान के गंभीर खतरे लिए हुए है। इसलिए आने वाले कुछ दशकों में धरती का तापमान दो डिग्री सेल्सियस तक काबू करने की गंभीर चुनौती दुनिया के सामने है। हाल में अर्जेंटीना में समूह-20 देशों के शिखर सम्मेलन में भी पोलैंड के जलवायु सम्मेलन को सफल बनाने के लिए खासतौर से चर्चा हुई थी।

तीन साल पहले दुनिया के ज्यादातर देशों ने जिस पेरिस जलवायु समझौते का समर्थन करते हुए पर्यावरण को बचाने का संकल्प लिया था, उसके नतीजे पोलैंड के इस सम्मेलन में दिखाई पड़ने की उम्मीद है। हालांकि दुखद यह रहा कि

अमेरिका ने इस करार को मानने से इनकार करते हुए अपने को समझौते से अलग कर लिया था। अमेरिका का कहना था कि इस समझौते में ऐसे कड़े आर्थिक प्रतिबंधों वाले प्रावधान हैं जो अमेरिकी हितों पर बुरा असर डालेंगे। धरती को बचाने के लिए सम्मेलन और शिखर बैठकें सालों से हो रही हैं, लेकिन ताकतवर राष्ट्रों के निहित स्वार्थों के कारण धरती को बचाने की कोई भी बात सिरे नहीं चढ़ पा रही। अमीर राष्ट्र पर्यावरण बिगाड़ने का सारा ठीकरा गरीब राष्ट्रों पर फोड़ते रहे हैं। दुनिया के आधे से ज्यादा देशों की हालत आज भी यह है कि वहां ईंधन के रूप में कोयला और लकड़ी जलाई जाती है, वाहनों और कारखानों से होने वाले प्रदूषण से निपटने की कोई योजना नहीं है। दिल्ली का ही उदाहरण लें, जहां ऐसे लाखों डीजल वाहन सड़कों पर दौड़ रहे हैं जिनकी अवधि पूरी हो चुकी है। ऐसे में पोलैंड का सम्मेलन कुछ रास्ता दिखाएगा, इसकी उम्मीद की जानी चाहिए।

तेल की राजनीति

संपादकीय

अंतरराष्ट्रीय कारोबार जगत की यह पुरानी बहस है कि तेल (पेट्रोल) दुनिया की राजनीति तय करता है या दुनिया की राजनीति तेल के दाम तय करती है। फिलहाल तो दूसरी ही बात सच होती दिख रही है। अक्टूबर के महीने तक आसमान में पहुंच चुकी तेल की कीमतें अचानक नीचे आनी शुरू हो गई थीं। नवंबर का अंत आते-आते वे 30 प्रतिशत तक गिर गईं। इतने कम समय में इतनी तेज गिरावट तो 2015 में भी नहीं हुई थी, जिसे तेल की बड़ी मंदी वाला वर्ष मानते हैं। तेल उत्पादन करने वाले देशों में अचानक ही यह डर पैदा हो गया था कि कहीं इस बार हाल उस मंदी से भी बुरा न हो। हालांकि भारी मात्रा में तेल का आयात करने वाले भारत जैसे देशों के लिए यह एक अच्छी खबर हो सकती थी। लेकिन दिसंबर आते-आते इस उम्मीद पर विराम लग गया है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतें अब अचानक ही पांच फीसदी बढ़ गई हैं। इसका सबसे बड़ा कारण तो यह बताया जा रहा है कि अमेरिका और चीन के बीच पिछले कुछ समय से जो व्यापार युद्ध चल रहा था, उस पर फिलहाल विराम लगाम लग गया है।

यह युद्ध विराम फिलहाल 90 दिनों के लिए है, जिस दौरान अमेरिका और चीन आपसी मसलों पर बातचीत करेंगे। बेशक अमेरिका और चीन की बातचीत का तेल की कीमतों से कोई सीधा नाता नहीं है, लेकिन इससे विश्व उद्योग जगत को जो सकारात्मक संकेत मिले हैं, वे पहले भी कीमतें बढ़ने का कारण बनते रहे हैं। एक अन्य कारण यह भी है कि तेल के दो सबसे बड़े निर्यातकों सऊदी अरब और रूस ने आपस में बातचीत करके उत्पादन कम करने का फैसला किया है, ताकि कीमतों को गिरने से रोका जा सके। तेल की कीमत का बढ़ जाना यह संकेत तो देता ही है कि उनकी रणनीति कामयाब रही है। हालांकि उनकी यह रणनीति कितने अरसे तक कितनी कामयाब रहेगी, यह कहना अभी थोड़ा मुश्किल है। खासकर तब, जब तेल निर्यात करने वाले देशों के संगठन ओपेक में ही फूट पड़ती दिख रही है। कतर ने अगले महीने से खुद को ओपेक से अलग करने का एलान कर दिया है।

बेशक, इसका कारण सऊदी अरब और कतर का आपसी झगड़ा है, लेकिन इसका पेट्रोल की राजनीति पर असर पड़ना भी तय है। यह ठीक है कि ओपेक के बाकी सदस्यों के मुकाबले कतर पेट्रोल का सबसे छोटा निर्यातक है, लेकिन अब जब

यह इस संगठन से अलग हो गया है, तो उत्पादन में कटौती के ओपेक के अनुशासन से भी बाहर हो गया है। अभी तक पेट्रोलियम उत्पादन में थोड़ी सी कमी-बेशी बाजार को तेजी से बदलती रही है, इसलिए कतर ओपेक के गणित को तो खराब कर ही सकता है। फिर पेट्रोल में भले ही वह पीछे हो, लेकिन प्राकृतिक गैस के बाजार का वह बड़ा खिलाड़ी है। तेल की कीमतों के बढ़ने के क्या नतीजे हो सकते हैं, इसके लिए हमें फ्रांस जाना होगा। वहां पर्यावरण के लिहाज से नए टैक्स लगाने के कारण पेट्रोल और गैस आदि ईंधन की कीमतें तेजी से बढ़ीं, तो पिछले सप्ताहांत में दंगे भड़क उठे। जाहिर है कि पेट्रोल की कीमतों ने फ्रांस जैसे देश की राजनीति पर भी असर डालना शुरू कर दिया है। यह बताता है कि भारत में हम भले ही पेट्रोल की बढ़ती कीमतों को लेकर रोना रोते रहते हों, लेकिन यह मसला दुनिया भर के लोगों को परेशान कर रहा है और हर जगह यह राजनीतिक मसला भी है।


THE HINDU
Date: 04-12-18

Secular democracy in peril

Indian politics today reminds one of the first decade of the existence of Pakistan

Mohammed Ayoob, (Mohammed Ayoob is University Distinguished Professor Emeritus of International Relations, Michigan State University and Non-Resident Senior Fellow, Center for Global Policy, Washington DC)

India is literally at the crossroads with the very future of its secular democracy at stake. With five important State Assembly elections in various stages of completion and the general election around the corner, the political temperature is at boiling point. Competitive Hindutva has become the name of the game, with the ostensibly secular Congress party trying desperately to demonstrate its Hindu credentials to cut into the base of the Hindu-nationalist BJP. Congress president Rahul Gandhi is busy visiting Hindu temples and publicising his caste genealogy for electoral gains. This is the first time since Independence that the religion and caste of a candidate for the job of Prime Minister is overtly portrayed as the defining basis for his/her claim to lead the country.

The Congress party's passive Hindutva will in all probability lead to its crushing defeat in the forthcoming general elections because, as a pale imitation of the BJP's aggressive Hindutva, it cannot compete with the genuine article. Mr. Gandhi and his advisers are confusing contrived demonstrations of personal religiosity with Hindu nationalism. The last is a clearly defined political ideology that, in direct contravention of the letter and spirit of the Constitution, is based on the notion that Hindus have exclusive claim to the country and Muslims and Christians are interlopers who can be treated as second-class citizens at best. It has nothing to do with personal piety and the religious tenets of Hinduism.

Rising intimidation

The Congress's passive Hindutva is ceding the ideological ground to the BJP by heavily diluting the tenets of secularism enshrined in the Constitution. The well-established secular norm of not overtly using

religion for electoral gains is now a thing of the past. A very dangerous aspect of this unfolding drama is the escalation in the politics of intimidation, which is undermining the rule of law and threatening the democratic fabric of India. The recent mobilisation of thousands of devotees in Ayodhya by the Vishva Hindu Parishad, the Rashtriya Swayamsevak Sangh, the Shiv Sena and related Hindu nationalist organisations is a prime example of this.

This mobilisation was a part of the strategy to put pressure on a government seen as friendly to the cause to build the Ram temple immediately on the site of the Babri mosque demolished in 1992. However, even more important, it was a direct challenge to the power of the Supreme Court where the matter is under adjudication, thus drastically undermining the judicial system itself. RSS chief Mohan Bhagwat made it clear in a speech during the rally in Ayodhya that “society does not move only by the words of law, but also by its own wishes”. Other speakers indulged in even more intemperate language. What started as a property dispute has thus been turned into a matter of faith beyond the purview of the courts.

Simultaneously, there is an anti-democratic wave sweeping through the country. Populism rather than liberal democracy is increasingly coming to define the nature of the Indian polity.

The opposite of patriotism

A jingoistic form of ultra-nationalism has become very popular. Politicians regularly engage in such rhetoric with discussants on TV channels, some of them retired military officers, also contributing in great measure to its legitimisation. This is the polar opposite of patriotism combined with liberal values that was enshrined in the Constitution and was held dear by the first generation of independent India's leadership.

A further indication of the erosion of democratic values is the tendency of highly placed serving military officers to comment publicly on sensitive issues of domestic and foreign policy. They intervene in debates such as those regarding illegal immigration and India-Pakistan relations, which should be the exclusive preserve of civilian leaders in government and in the opposition. This would not have been tolerated in an earlier era because the founding fathers of the republic were emphatic that civilian supremacy over the military brass must be safeguarded at all costs and the military isolated from the political arena.

The current trajectory of Indian politics reminds one eerily of the first decade of the existence of neighbouring Pakistan. Mounting majoritarianism fuelled by religious intolerance, hyper-nationalism born out of insecurity, deliberate erosion of political and judicial institutions, and creeping military intervention in the political arena finally led to the first military coup in Pakistan in 1958. This paved the way for a succession of military takeovers. One of these resulted in the division of Pakistan in 1971 and another in the creation of terrorist outfits in the 1980s that continue not only to threaten India and Afghanistan but also to tear apart Pakistan's social fabric. Pakistan has never recovered from the tragic errors committed in its early years and is paying a very high price for it today. One hopes that India will not go down the same path because otherwise, the largest democracy in the world could face an equally bleak future.
